शिमला के मंदिरों से संबंधित लोक कथाओं में संगीत का अध्ययन

डॉ. विजेश पाण्डेय
बलग, ठियोग, शिमला, हिमाचल प्रदेश

संगीत एक ऐसी सक्षम कला है जिसमें ऐसी आध्यात्मिक शक्ति है, जिसके द्वारा यह संसार के प्रत्येक प्राणी को अभिभूत कर लेता है। संगीत के क्षेत्र में आकर पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण का भेद मिट जाता है केवल स्वरावलियों की मिठास ही रहती है। संगीत की मधुरिमा से न केवल बुद्धिजीवी ही वरन् मानवेत्तर प्राणी भी प्रभावित होते हैं। इस बदलते परिवेश में वैदिक काल से आज तक न जानें कितनें परिवर्तन हुए, न जानें कितनी देशी–विदेशी संस्कृतियों का समागम हुआ पर भारतीय संगीत उन सब प्रवृतियों को अपनें अंदर समेटकर अपना अस्तित्व ज्यों का त्यों बनाए हुए है। विविधता में जीवित रहकर भी एकता बनाए रखना भारतीय संगीत का अपना गुण है।

भारतवर्ष के सब प्रान्तों से अलग उत्तरी क्षेत्र में स्थापित हिमाचल प्रदेश अपनें में एक अलग ही पहचान बनाए हुए है। इस प्रान्त के क्षेत्र में असंख्य देवी–देवताओं के मंदिर हैं। जिसके कारण हिमाचल प्रेदश को देवभूमि कहकर भी पुकारा जाता है। इन मंदिरों की लोककथाएं भी जनश्रुति से सुनी जा सकती हैं। इन लोककथाओं पर आधारित देव–गीत, लोक संगीत के अन्तर्गत आकर भी विशेष मांगलिक व देव पर्वों में ही गाए जाते हैं। जिसे दैविक शक्ति का प्रतीक माना जाता है। मंदिरों का संगीत प्राचीन होनें के साथ–साथ आध्यात्मक व बल, बुद्धि प्राप्ति का साधन है।

लोक संगीत मानव के भावनात्मक तथा संवेदना से भरपूर हृदय के वे स्वाभाविक उद्गार हैं जो संगीत की धारा के रूप में प्रवाहित हो उठते हैं। संगीत व संस्कृति का चोली–दामन का साथ रहा है। संगीत चाहे नया हो या पुराना, वह अपने विकास की सामग्री जन–जीवन से जुटाता रहा है। संगीत के इतिहास को संस्कृति के इतिहास से अलग नहीं किया जा सकता। लोक–संगीत में मानव जीवन की छवि प्रतिबिंबित होती है, जिसके द्वारा हम प्राचीन को आधुनिक से जोड़ते हैं। हमारी संस्कृति, सभ्यता की सुरक्षा जितनी लोक–संगीत द्वारा होती है उतनी किसी दूसरे माध्यम से संभव नहीं। वास्तव में लोक–संगीत में ही मानव–जीवन के सच्चे आदर्शों का मूल्यांकन देखने को मिलता है। लोक–संगीत पर समय का प्रभाव पड़ता है। जैसे–जैसे सामान्य जनभाषा में परिवर्तन होता है, वैसे–वैसे ही लोक संगीत की भाषा बदलती रहती है, परंतु भाव वही रहते हैं।

लोक–गीत

लोक संगीत का सबसे सशक्त माध्यम लोक–गीत हैं। कहा गया है कि लोक–गीत किसी भी संस्कृति के मुंह बोलतें चित्र हैं। लोक–गीतों का रचयिता अज्ञात है और फिर वही गीत मौलिक परम्परा में रहने के कारण अन्य व्यक्तियों द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है।

शिमला क्षेत्र के साधारण दैनिक–जीवन में लोकगीत का बहुत महत्व है। यहां के गीतों में देवी–देवताओं, वीरों की वीरताओं, राजाओं तथा प्रेमियों के कार्य–कलापों तथा हर्ष–वेदना का वर्णन

मिलता है। यह वर्णन स्थानीय बोली में गीतों के साथ गाए अथवा सुने जाते हैं। विभिन्न धार्मिक अथवा सामाजिक अवसरों पर उसी के अनुसार जन्म से विवाह तक के गीतों का गठन किया गया है जो समय–समय पर कानों को आनंद, माधुर्य प्रदान करता है। इन लोकगीतों को एकल अथवा सामूहिक रूप से गाया जाता है। जिसके साथ शहनाई, करनाल, ढोल, रणसिंगा, खंजरी इत्यादि वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

लोककथा अर्थ एवं परिभाषा

लोककथा के लिए अंग्रेजी में फोकटेल शब्द प्रचलित है। इसके अंतर्गत अवदान, धर्मगाथा, पशु–पक्षी विषयक कहानियां, नीति कथाएं समाविष्ट की जाती है। स्टिथ थाम्पसन के अनुसार लोक कथा शब्द लोक प्रचलित उन कथाओं के लिए प्रयुक्त होता है, जो मौखिक परम्परा द्वारा निरंतर रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होती रहती है। इन कथाओं का जन्म भी मानव के साथ हुआ होगा और उसी प्रकार विकास की परम्परा में चलती हुई ये आज तक जीवित है। मिल्डरेड आर्चर के अनुसार लोक कथाएं जातीय ज्ञान को सुरक्षित रखती है तथा जातीय रीति–रिवाज को व्यवहार योग्य ठहराती है। वे स्तर और मूल्य निर्धारित करती हैं और आत्मविश्वास भरती है। लोक कथाएं शक्ति का भंडार है, जिससे कि जातीय जीवन सशक्त रहता है। वासुदेव शरण अग्रवाल का कहना है कि लोक मानस ज्ञान कथा को कहानी के रूप में स्वीकार करता है, जो ज्ञान कहानी के रूप में सरल नहीं, वह लोक मानस में नहीं पचता। मानव जाति बुद्धि का कितलन की विकास कर ले, वह प्रत्येक नई पीढ़ी में बाल भाव से ही जीवन चक्र का आरंभ करते हैं। बाल भवन की शिक्षा–दीक्षा, रूचि और विचार के एक मात्र आश्रय कहानी है।

लोक साहित्य के अध्ययन में लोक कथाओं का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। व्यापकता और प्रचुरता की दृष्टि से इनका मूल्य अधिक है। भारतीय लोक साहित्य में लोक कथाओं की संख्या अनंत है। सर्वप्रथम भारतीय कहानियों का अनुवाद अरबी और पहलवी भाषाओं में हुआ। डॉ. सत्येन्द्र का कहना है कि धर्म गाथाओं और लोक कथाओं के अध्ययन से यह विदित होता है कि इनका मूल बहुत प्राचीन है और ये संभवतः उस समय की धुंधली रूपरेखा का युग था, जबकि विविध राष्ट्रों और देशों में विभाजित आर्य जन विभाजन से पूर्व शांति पूर्वक किसी एक स्थान पर रहते थे। यूं तो कहानियों का मौखिक रूप दृष्टि के समारंभ से ही प्रत्येक देश में पाया जाता है। ये पारंपरिक कहानियां उस देश में घास की तरह अपने आप पैदा हुई है। लोक कथाओं की परम्परा अति प्राचीन है।

देवताओं से संबंधित लोक–कथाएं

मंग्लेश्वर महादेव

शिमला से लगभग 65 किलोमीटर का बस सफर तय करने के पश्चात बलग गांव में पहुंच जाते हैं जहां पर इस गांव के मध्य भाग में पांडवों द्वारा स्थापित प्राचीत मंग्लेश्वर महादेव का मंदिर स्थापित है। यह मंदिर शिखर शैली में निर्मित तथा वास्तु कला के लिए हिमाचल में काफी प्रसिद्ध है। मंदिर का निर्माण बड़ी–बड़ी पत्थर की शिलाओं में किया गया है। इन पत्थरों पर वास्तुकला के दृश्य देखने को मिलते हैं। मंदिर की छत ढलावदार होने के कारण इसे पत्थर की बड़ी–बड़ी स्लेट आकार की

शिलाओं से ढका है। मंदिरों की बाहरी दीवारों पर विभिन्न प्रकार की प्रतिमाएं अंकित है यह दिवारें लकड़ी की बनी है।

मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है। इस मंदिर व शिवलिंग की स्थापना के विषय में यहां की स्थानीय जनश्रुति का कहना है कि इस मंदिर व शिवलिंग की स्थापना पांडवों ने की थी। इस मंदिर परिसर में पत्थर की शिलाओं पर लिखे लेख को, 'भाषा कला एवं संस्कृति विभाग' द्वारा पढ़ा गया है। उनका मानना भी यही है कि इस प्राचीन मंदिर का निर्माण पांडवों ने किया। पुरातन में यह मंदिर गिरीगंगा नदी के तट पर स्थापित था। लेकिन आज के समय गीरीगंगा नदी लगभग दो सौ मीटर नीचे समुद्रतल की तरफ जा चुकी है। शिवलिंग के अतिरिक्त इस मंदिर में अन्य देवी–देवताओं की प्रतिमाएं भी स्थापित हैं यह प्रतिमाएं उस समय यहां प्राप्त हुई जब मंदिर परिसार की खुदाई का नव–निर्माण व विस्तार किया जा रहा था। जनश्रुति के अनुसार पांडवों के नाम से यहां पांच मंदिर थे लेकिन किसी कारण से युधिष्ठर, अर्जुन, सहदेव के मंदिर क्षीण हो गए और भीम व नकुल के मंदिर आज भी इस स्थान में अपनी प्राचीन कला संस्कृति को दर्शा रहे हैं। भीम के मंदिर के गर्भगृह में ही शिवलिंग का स्थापना है। मंदिर परिसर की खुदाई के समय इस स्थान पर भगवान विष्णु और माँ दुर्गा की प्रतिमा भी प्राप्त हुई। दुर्गा माँ को महिषासुर मर्दिनी के रूप में दर्शाया गया है। एक अन्य प्रतिमा में देवी को शांत रूप में देखा जा सकता है। इन सब प्रतिमाओं को मंदिर के छोटे–छोटे भाग में सुरक्षित रखा गया है। मंदिर कें गर्भगृह के समक्ष मण्डप बना है इसके स्तंभ में अनेक प्रकार के जानवरों की आकृतियां बनी है।

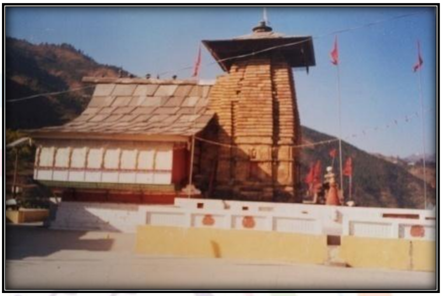

इस मंदिर के साथ ही एक सात मंजिला भवन है जो पहाड़ी शैली का सुंदर उदाहरण है। यह मंदिर परशुराम जी के नाम से जाना जाता हैं। इस मंदिर के विषय में एक प्राचीन लोककथा यह भी है कि बलग प्राचीनकाल में महापराक्रमी में महापराक्रमी सम्राट बली की राजधानी रहा है। बली को इस क्षेत्र का स्वामी भी माना जाता है। बली के कई देवताओं को अपने पराक्रम बल से बंदी बनाकर कारागर में डाल रखा था। इसलिए उन्हें मुक्त करने हेतु भगवान विष्णु ने वामन रूप में धारण किया तथा बली राजा से छल–पूर्वक भूमि का ढाई कदम दान मांगा था। दान का संकल्प करने के बाद वामन भगवान ने अपना विशाल रूप बनाकर एक कदम में पृथ्वी लोक तथा दूसरे कदम में स्वर्ग लोक नाप डाला फिर भगवान ने आधा कदम रखने के लिए स्थान मांगा तो बली महाराज ने अपने संकल्प को पूरा करने के लिए बली महाराज ने अपने सिर पर कदम रखने को कहा। इस प्रकार बली महाराज का अंत हुआ और सभी देवताओं को मुक्त कर दिया गया। जनश्रुति के अनुसार बली द्वारा पूजित यह शिवलिंग स्थापित वहां है जहां भगवान विष्णु को भूमि दान दिया गया था। जिसकी आज भी सम्मानपूर्वक पूजा–अर्चना की जाती है।

प्राचीन शिव मंदिर की पूजा यहां की स्थानीय ब्राह्माणों द्वारा हर रोज प्रातः काल व सांयकाल की जाती है। जिन में ये वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते हैं। इस शिव मंदिर के संरक्षक पंडा जाति के ब्राह्मण हैं। ग्लैईक व सुवैईक कहकर भी इनके वंशज को आज पुकारा जाता है। इस मंदिर की शक्ति का एक 'गुर' है जिसे देव रूप माना जाता है। कोई भी मुश्किल या नीच भूत–प्रेत से ग्रस्त लोगों की सारी मुश्किलों का दैविक रूप गुर द्वारा निकाला जाता है। इस आस्था पर लोगों का गहरा विश्वास है। 'गुर' निर्वाचन में स्थानीय लोगों की कोई भी इच्छा नहीं होती। स्थानीय लोग मंदिर परिसर में इक्कठे होकर दैविक शक्ति पूजा–अर्चना कर यही प्रार्थना करते हैं कि अपनी शक्ति (खेल) को किसी ब्राह्मण में अवतरित कर शक्ति के प्रत्यक्ष दर्शन दें। इस तरह प्रार्थना करने के पश्चात इस शक्ति का बलग ग्राम के किसी ब्राह्मण में अवतरित होने में कई दिन–महीने भी लग जाते हैं। शक्ति अवतररित होने पर उस क्षेत्र के सभी लोग उसे दैविक शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। 'गुर' की वाणी को शक्ति पीठ पर खड़े होकर शिव की वाणी कहा जाता है। जिस पर इस क्षेत्र की जनश्रुति द्वारा आज भी अमल किया जाता है।

देवताओं से संबंधित अन्य लोक–कथाओं में शिव महादेव, बिजट महादेव मंदिर, हनुमान मंदिर जाखू , संकट मोचन मंदिर,सूर्य मंदिर, रुद्रावतार शिकडू देवता की कथाएं भी हैं।

शिमला के प्राचीन मंदिरों से संबंधित लोक–कथाओं पर आधारित देव–गीत

गीत और देव गीत से अभिप्राय

गीत शब्द की व्याख्या हम कुछ इस प्रकार से कर सकते हैं मानों एक कविता लिखित रूप में है, निर्जीव सी, कोई पढ़ेगा, कोइ नही पढ़ेगा। लेकिन यदि कोई गायक उसी कविता के बोलो को गूंथकर उन्हें स्वरों में ढालता है तो वह निर्जीव सी लग रही कविता स्वरों के पंख लगाकर संगीत के उन्मुक्त गगन में विचरण करने लगती है मानों एक सुन्दर सी मछली अथाह गहरे समुद्र में जाकर फिर बाहर निकलकर लोगों को रिझा रही हो। स्वरों और शब्दों का पारस्परिक मेल जिसमें गायक अपने मधुर कण्ठ से माधुर्य भरता हे वही गीत है। कोई भी ऐसा पाषाण ह्रदयी होगा जिसे किसी गीत के स्वर आकर्षित न कर पाते हों। चाहे वो शास्त्रीय संगीत का ज्ञाता है या नहीं फिर भी कोई न कोई ऐसी रचना हो जो उसे प्रिय है वह उसे ही गुनगुनाएगा। गीत भी कई प्रकार के होते हैं जैसे फिल्मी गीत जिसमें हर तरह के सौन्दर्य का वर्णन होता है। आजकल लोक फिल्मी गीत सुनना अधिक पसंद करते हैं जिसके कारण यह अपनी लोक संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। लेकिन यह ध्यान पूर्वक देखा जाए तो लोक गीत ही हमारी संस्कृति के आईने हैं जिसमें हमारे जन–जीवन, संस्कृति की स्पष्ट झलक दृष्टि गोचर होती है। आदिम मनुष्यों के हृदयगीत ही लोक गीत हैं इनमें कहानी है, उनके छवि की, उनके दुःख की, उनकी वेदना की लोगीत किसी भी कलम द्वारा नहीं लिखे गए हैं। पीढ़ी–दर–पीढ़ी रहने के कारण ये अमर हैं। और इनें हर पीढ़ी के लोगों द्वारा गाया बजाया जाता है। लोकगीत सीधे तौर पर किसी मस्तिष्क की उपज नहीं होते वरन् परिस्थितियां ही लोकगीतों को जन्म देती हैं। कृषक तथा श्रामिक श्रम–जनित सुधा एवं पीड़ा को विरह में गाकर, अपने अभाव भरे जीवन के दर्द को होली, बसन्त आदि पर्वों में बिखेरता है। सावनी मेघ, रिमझिम वर्षा, नदी नालों की कलकल बहती

जलधाराएं, होली में भीगता आंचल, बसंत में झूमता मन, चैती सरसाएं खेत, वन–उपवन में बोलते विहग अनन्तकाल में असंख्य लोकगीतों को जन्म देते आ रहे हैं।[8]

देव–गीत

देव–गीत से अभिप्राय शास्त्रों में वर्णित संगीत की व्याख्या के अनुसार ही है अर्थात संगीत ही तरह देवगीत में भी गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का समावेश है। अर्थात देवी संगीत में गायन, वादन एवं नृत्य तीनों कलाओं का समावेश होता है हिन्दू जीवन में त्यौहारों का बड़ा माहात्म्य है। ये त्यौहार हमारे धर्म के अंग है। हमारे यहां सामाजिक त्यौहारों की अपेक्षा धार्मिक त्यौहारों पर विशेष जोर दिया गया है, और इसका कारण उनकी महत्ता है। हमारे यहां त्यौहारों का जितना महत्व है संभवतः उतना संसार के किसी भी देश में नहीं होगा। कहीं–कहीं त्यौहारों मेलों अथवा उत्सवों की महत्ता प्रतिपादित करने के लिए इन्हें देवी या देवताओं का रूप प्रदान किया गया है। अतः संभव है कि इन देवी–देवताओं से संबंधित त्यौहार अथवा उत्सवों पर देव–संगीत अर्थात देवी गीत, देव नृत्य तथा देव वाद्य वादन का होना नितांत आवश्यक है। शिमला क्षेत्र के हर गांव में भी देवी–देवताओं के प्राचीन मंदिर हैं जहां पर देवी–देवताओं की विभिन्न मूर्तियां स्थापित हैं। प्रत्येक देवी–देवताओं की अपनी एक प्रजा होती है जो इनकी नित्य पूजा करती है। यहां पर स्थापित देवी–देवताओं की अष्ट धातु, कांस्य, सोने–चांदी के छोटे–छोटे मुखावरण होते है जिन्हें स्थानीय भाषा में मोहरे कहते हैं। इन मोहनों को काष्ठ या सोने–चांदी के रथों में रंग–बिरंगे वस्त्रों तथा हार–सिंगार से सुसज्जित किया जाता है तथा जहां भी कोई देव–उत्सव होता है वहां इन रथों का सिर या कंधे पर उठाकर नचाया जाता है। इसयके अतिरिक्त इन देव उत्सवों पर लोक कथाओं, विभिन्न स्तुति गीतों तथा नृत्यों का भी प्रयोग किया जाता है। इन देवगीतों व नृत्य के साथ लोक वाद्य नगारा, ढोल, शहनाई, करनाल, घंटा आदि वाद्यों को बजाया जाता है।

शिमला क्षेत्र का देव संगीत भी इस क्षेत्रों की स्थानीय लोक भाषा होने के कारण इसे भी लोक संगीत के अंतर्गत माना गया। यदि इनका विश्लेषण किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि देव संगीत और लोक संगीत का अलग अलग श्रेणी में रखा जाना चाहिए क्योंकि देव गीत व प्रभु भक्ति संगीत ही प्रयोग होता है। जबकि लोक संगीत के अंतर्गत विभिनन श्रृगांरिक लाक कथाएं व गीत, प्रेम कथाएं तथा अन्य प्रकार की घटनाएं आदि होती हैं। इस तरह देवी गीत से सीधा सा अभिप्राय यह है कि जिस संगीत में ईश्वर उपासना ईश्वर भक्ति, देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना, देवी–देवताओं के मंदिर की स्थापना व शक्ति का गुणगान, देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गायी जा रही देव–स्तुति आदि जिस विधि का प्रयोग किया जाता है वह देव संगीत ही है।

हिमाचल प्रदेश शिमला जिले के क्षेत्रों में वैसे तो देव–संगीत से संबंधित हर विधा अपना महत्व रखती है जैसे भिन्न भिन्न प्रकार के मेले, त्यौहार, देव उत्सव तथा संस्कार उत्सवों पर गाए जाने वाले गीत, देवी गीत के अंतर्गत आते हैं। शिमला जिले के क्षेत्रों में देव–गीतों के रूप में ईश्वर आराधना की परिपाटी आज भी देखने को मिलती है। जैसा कहा जा चुका है कि शिमला जिले के प्रत्येक क्षेत्रों के

[8] डा. गौतम शर्मा, कांगड़ा के लोकगीत, साहित्यिक विश्लेषण एवं मूल्यांकन, पृ. 50।

गावों में किसी न किसी देवी–देवताओं के प्राचीन मंदिर निर्मित हैं और इन मंदिरों के निर्माण की कोई न कोई लोककथा प्राचीन काल से ही पारम्परागत रूप में चली आ रही है। जो वहां की स्थानीय जनता या बुजुर्गों से पीढ़ी–दर–पीढ़ी जुबानी सुनी जा सकती है। इन प्राचीन मंदिरों में से कुछ एक मंदिर की लोक कथाओं को स्थानीय जनश्रुति व किसी क्षेत्रीय कलाकार द्वारा कविताबद्ध कर गेय रूप प्रदान किया गया है। जिसमें मंदिर निर्माण से संबंधित व देव शक्ति नाम का भी वर्णन किया गया है। और इन्हें देव गीत रूप में देव उत्सवों, देव मेले व त्यौहारों में खुले प्रांगण में गाया जाता है। देव–गीतों के साथ नृत्य व दैविक ताल वाद्यों का प्रयोग कर देव–गीतों को और अधिक सौन्दर्य प्रदान किया जाता है। यहां कुछ प्रचालित देव गीतों को स्वरलिपि सहित संक्षित व्याख्यात्मक रूप में वर्णित किया जा रहा है।

1) मंग्लेश्वर महादेव मंदिर की लोककथा पर आधारित देव गीत –

तेरो तीरथ बलग देवा सारी दुनियेदा नाव,
बलिराजरे कारणे देवा पड़ो बलगरो नाव।।
आप आपणी इछीये देवा सारे जारू आवे,
तेरी मंदिर बलग देवा पांजे पांडवे बणावे।।
ओरो मंदिर शिवजी रो पोरी सितला माई,
तेरी केश्दी देखदी देवा सारी दुनियां आई।।
भीम–नकुलरे मंदिर शिखर धजा लेहराई,
ऊंचो मंदिर परशुरामरो साथी काली–ठोड़ माई।।
दूध चड़लो शिवजी मंदिरे जोत जलले धीये,
करे मनरी सबिरी पूरी आव निछले जू जीवे।।

×		2		3		4	
1	2	3	4	5	6	7	8
सांसां	सां	सांसां	नी़	ध	नी़	ध	प
–तेरो	ती	रथ	ब	ल	ग	दे–	वा
पध	प	म	मप	मगरे	सानी़	–	–
–सारी	दु	नि–	येदा	ना––	वो–	–	–
नी़नी़	सा	सा	रे	गग	म	ग	रे
–बलि	रा	ज	रं–	कार	णे	दे	वा
गग	म	ग	रेसा	सा	नी़	–	–
–पड़ी	ब	ल	गरो	ना	वो	–	–

2) शिव महादेव पुड़ग की लोककथा पर आधारित देव गीत–

तेरी जे जे कारा, करू तेरी जे कारा, तेरी जे जे कारा, करू तेरी जे कारा।।
मारे देवता पुड़गरेयातेरी जे जे कारा, दुई हाथ करू जोड़िये देवा तांखे नमस्कारा,
तेरी...................................कारा।।
जमुनी तलाबद आवली दूध–घीयरी बास,
जमुनी तालाब किनारे थिया शिवजी रा वास,
तेरी.....................................कारा।।
पुड़ग कपरेटरे घरे दिये दर्श राती,
करगाले सब लोकुवे दर्श लेवा शिवजी साथी,
तेरी...................................कारा।।
टेवों मंदिर पुड़ग गांवे दिया शिवजी स्थान,
आर–पार गावें पन्दरे राख गाला तेरा मान,
तेरी.......................................कारा।।
दूर–दूर द जातरू देवा आज जातर तेरी,
हरे सभी रे दुखड़े देवा करे मनरी पूरी,
तेरी...................................कारा।।

×		2		3		4		3		4	
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
स्थाई											
सा	रे	–	सा	रे	–	सा	प	–	–	–	–
ते	री	–	जे	जे	–	का	रा	–	–	–	–
सा	ध	ध	प	पध	–	प	म	–	–	–	–
क	रु	ते	री	–	का	रा	–	–	–	–	–
सा	रे	–	सा	रे	–	सा	प	–	–	–	–
ते	री	–	जे	जे	–	का	रा	–	–	–	–
सा	ध	ध	प	पध	–	प	म	–	–	–	–
क	रु	ते	री	जे	.	का	रा	–	–	–	–
अंतरा											
ग	म	ध	प	पध	–	प	म	म	ध	प	–
मा	रे	दे	व	ता	–	पु	ड़	ग	रे	या	–
ग	म	पप	–	म	–	ग	म	–	–	–	–
ते	री	–	जे	जे	–	का	रा	–	–	–	–
सां	ध	ध	प	प	ध	प	म	म	ध	प	–
दु	ई	हा	थ	क	रु	जो	ड़ी	य	दे	वा	–

ग	म	प	प	म	–	ग	म	–	–	–	–
ता	खे	न	म	स	–	का	रा	–	–	–	–

शिमला क्षेत्र के देव–गीतों में प्रयुक्त वाद्य

डमरू

संगीत की उत्पत्ति करने वाले देव महादेवी कैलाशपति, पहाड़ों के राजा शंकर भगवान की पूजा हिमाचल के प्रत्येक क्षेत्र में की जाती है। यहां के प्रचीनतम शिव मंदिरों में शिव पार्वती विवाह शिवरात्रि के अवसर तिाि अन्य अवसरों पर शिव की पूजा की जाती है। वेद शास्त्रों में भी शिव का वर्णन कैलाश पति के रूप में किया गया है। संगीत शास्त्रों में शिव को संगीत का जन्मदाता कहा गया है तथा शिव के डमरू को प्रथम वाद्य के रूप में शिव द्वारा आविष्कृत माना जाता है। भारत के विभिन्न मन्दिरों तथा हिमाचल के प्राचीनतम मन्दिरों में नटराज शिव के भिती चित्रों एवं प्राचीनतम मूर्तियों में हाथ में डमरू की प्राचीन ऐतिहासिक जानकारी मितली है। हिमाचल मे विशेषकर शिमला क्षेत्र में शिव की लोक–गाथाओं एवं अन्य देव–गाथाओं के साथ डमरू का वादन लय व ताल के लिए होता है। इन प्राचीनतम लोक–गाथाओं के गायन से ही ज्ञात होता है। कि यहां पर डमरू का वादन प्राचीन समय से ही होता आ रहा है। यहां डमरू का अपभ्रंश शब्द 'डँऊंरू' के नाम से ही यह वाद्य अधिकतर प्रचलित है। शिमला क्षेत्र में रक्षा–बंधन की पूर्णमासी की रात्रि को गुग्गा गाथा का आयोजन कई घरों में किया जाता है। जहां गांव के लोग, सगे–संबंधी एकत्रित होते हैं और रात भर गुग्गा गाथा का डमरू वादन के साथ आनंद लेते हैं। कृष्णजन्माष्टमी के दूसरे दिन 'गुग्गा नवमी' होती है। यह एक भव्य त्यौहार होता है जो कई प्रमुख स्थानों एवं भूतपूर्व रियासतों की राजधानियों में मनाया जाता है जहां पर गुग्गा की छड़ी लेकर सभी गुग्गा गायक डमरू के साथ गुग्गा गाथा गाते हैं इस उत्सव पर हजारों लोग गुग्गा के दर्शन करते हैं और गुग्गा गाथा का आनंद लेते हैं। इसके अतिरिक्त लोक–भजनों, लोक–गीतों के साथ भी डमरू वाद्य का वादन होता है। इन क्षेत्रों में डमरू का प्रचलन पहले से है और सदियों से इस वाद्य को यहां पर लोकप्रियता भी प्राप्त है।

नगारा

नगारा वाद्य शिमला के लोक वाद्यों में विशेषकर अवनद्ध वाद्यों में प्रमुख वाद्य है। यदि इसे अवनद्ध वाद्यों का मुखिया भी कहा जाए तो शायद अनुचित न होगा। नगारा ही वृंद वादन का संचालन एवं प्रतिनिधित्व करता है। चाहे नौबत, गज या नौपद विव की यात्रा या देव–गीतों के साथ इस वाद्य का अधिकतर प्रयोग होता है। मंदिरों में सुबह–शाम जब पूजा की जाती है। तो नगारों का

लगातार तब तब बजता रहना आवश्यक है जब तक पूजा सामप्त न हो जाए। अधिकतर शिमला के क्षेत्रों में इसका वादन मंदिर पर रात्रि 12 बजे को भी एक विशेष जाति द्वारा जिन्हें 'तुरी' कहते है के द्वारा किया जाता है। जिससे सभी गांव वालों को मंदिर मे सुरक्षित होने की सूचना प्राप्त होती है। इस वाद्य का वादन प्रत्येक मांगलिक कार्यों में होता है तथा कई क्षेत्रों में शव यात्रा के समय भी इसका वादन किया जाता है यह वाद्य पूरे प्रदेश में ही नहीं बल्कि भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर थोड़े–थोड़े परिवर्तित रूप में या परिवर्तित नाम से प्रचलित है। यह लोहे आदि धातुओं से निर्मित कटोरानुमा वाद्य है। जिस पर चमड़ा मड़ा जाता है। पृष्ठभाग की ओर यह शंकु आकार का होता है।

नगारा वाद्य शिमला जिले का एक बहुत प्रचलित लोक वाद्य है। खुशी का कोई ऐसा अवसर नहीं जब इस वाद्य का वादन न हो। मंदिरों में तथा विवाह जैसे विशेष अवसरों पर इसका वादन कुछ निपुण वादकों द्वारा ही किया जाता है। इस वाद्य की ध्वनि को ही मांगलिक माना जाता है। अतः जब कोई मंगलकार्य आरंभ किया जाता है तो नगारा वाद्या की पूजा अर्चना करके इसके वादन से कार्य आरंभ हो जाता है। एक और जहां यह मनोरंजन का साधन रहता हे वहीं दूसरी आरे इसकी ध्वनि मात्र से लोगों को पता चल जाता है कि अमुक मंगल कार्य प्रारंभ हो चुका है। वो चाहे देवकार्य हो या जन्म संस्कार चाहे फिर विवाह संस्कार हो 'ताल' से स्पष्ट हो जाता है कि कौन सा कार्य किया जा रहा है। शिमला के क्षेत्रों में इसकी बनावट शैली में कहीं–कहीं अंतर भी देखने को मिलता है पर इसकी उपयोगिता सभी शिमला जिले के क्षेत्रों में एक जैसी ही है।

ढोल

अवनद्ध वाद्यों के प्रमुख वाद्य ढोल न केवल शिमला या हिमाचल प्रदेश में अपितु पूरे भारतवर्ष एवं विश्व के अनेक देशों मे प्रचलित है। आकार प्रकार में थोड़ा बहुत अंतर होने की वजह से ये अनेक नामों से जाना जाता है अथवा भाषा परिवर्तन होने से भी इसके भिन्न–भिन्न नाम हमें सुनने को मिलते हैं। इसके आकार में थोड़ा बहुत परिवर्तन होने से ये वाद्य यानपी ढोल ढोलक या ढौंस के रूप में जाना जाता हैं ढोल वाद्य प्राचीन पुष्कर जाति का वाद्य है।

हिन्दी विश्व कोष के अनुसार – ढोल एक प्रकार का बाजा है जिसके दोनों ओर चमड़ा मड़ा होता है रुद्रयामल में इस वाद्य का नाम पाया जाता है। ये ग्राम्य बहिर्हारिक यंत्र है। ढोलक से कुछ बड़ा होता है यह बाजा प्रायः गले में लटका कर एक तरफ हाथ से और एक तरफ लकड़ी से बजाया जाता है। ढोल प्राचीन व मध्यकाल से लेकर आधुनिक समय का बहुप्रचलित वाद्य है जिसका प्रयोग शिमला के ही नहीं बल्कि हिमाचल प्रदेश के लोक–संगीत में भी होता आ रहा है।

चाम्बी ढोल

यह भी ढोल के समान होता है, अंतर यह है कि ढोल कुछ विभिन्न धातुओं का बना होता हे जैसे चांदी, पीतल, तांबा, मिश्र धातु आदि। लकड़ी के ढोल की उपेक्षा इस ढोल के बाहरी भाग में चित्रकारी होती है। इस वाद्य को भी ढोल की भांति बकरे की खाल से मढ़ा जाता है तथा सूत की रस्सियों का पूड़े को मढ़ने के लिए प्रयोग होता है। इस वाद्य की विशेषता यह है कि इसे केवल बायें पूड़े पर ही एक मुड़ी हुई छड़ी के साथ बजाया जाता है। अधिकतर इसे ताली अथवा ताल लय को दिखाने के लिए ही लोक तालों के लिए प्रयोग किया जाता है। यह वाद्य पूर्ण ताल वारन के लिए नहीं प्रयोग होता है। अन्य वाद्यों के साथ ताल, ताली अथवा लय की चाल दिखाने के लिए इसवाद्य का प्रयोग होता है अधिकतर यह वाद्य देवताओं अथवा देव यात्रा और देव उत्सवों पर ही प्रयोग किया जाता है।

हुड़की

हुड़की या हुड़क भी डमरू का ही एक प्रकार है इसका भी डमरू की भांति एक प्राचीन इतिहास है। इस वाद्य का वर्णन विभिन्न शास्त्रों में भी पाया जाता है जिससे इस वाद्य की प्राचीन जानकारी का पता चलता है। यह वाद्य डमरू के ही समान है। परंतु इसका आकार कुछ डमरू से बड़ा है। इसकी वादन विधि भी भिन्न है। इस वाद्य का प्रयोग अधिकतर शिमला के ऊपरी क्षेत्रों में होता है। हुड़की का वादन अधिकतर सामूहिक रूप से इसके वादक कलाकार स्थानीय वेशभूषा में नृत्य करते हुए करते हैं। इन वादक कलाकारों की कोई निश्चित संख्या नहीं होती है। यह संख्या चार–आठ या इससे अधिक व कम भी हो सकती है। देव उत्सवों एवं अन्य त्यौहारों के असवर पर इस वाद्य का वादन तो होता ही है परंतु अधिकतर इस वाद्य का प्रयोग शिमला जिले के कुछ एक क्षेत्रों में नाटी नृत्य के साथ होता है। अन्य नर्ततकों के साथ हुड़की वादक भी एक हाथ से हुड़की पर थाप देकर स्वयं भी नृत्य करता है। इस वाद्य का आकार छोटा होता और बड़ा भी होता है डमरू के पश्चात ही इन डमरू के प्रकारों का प्रचलन हुआ ऐसा समझा जाता है।

ताशा

यह वाद्य शिमला के उत्तरी भाग में अधिक प्रचलित है। इस वाद्य का इतिहास भी अन्य वाद्यों ढोल के साथ जुड़ा हुआ है जिसका वर्णन महाभारत में कृष्ण की होरी–लीला के साथ प्राचीन कवियों द्वारा किया गया है। यह वाद्य ढोल से साथ बजाया जाता है। इस वाद्य का प्रयोग प्राचीन देव उत्सवों,

देव–त्यौहारों एवं सांस्कृतिक उत्सवों पर सामूहिक रूप से ढोल, नगारा के साथ किया जाता है। देव–गीतों के अतिरिक्त विवाह तथा अन्य मांगलिक त्यौहारों पर भी इस वाद्य का वादन होता है। अब धीरे–धीरे इस वाद्य का वादन तथा इसके वादक कलाकार केवल नाममात्र रह गए हैं।

खंजरी

खंजरी वाद्य यू ंतो किसी न किसी नाम या रूप में विष्व के कई भागों में प्रयोग होता है। परंतु भारत के पहाड़ी क्षेत्रों तथा दक्षिण भारत में इसका महत्पवूर्ण स्थान है। शिमला क्षेत्र में इसका प्रचलन कब और किस प्रकार हुआ यह कहना तो कठिन है परंतु सदियों से पारम्परिक लोक–संगीत के साथ इस वाद्य का प्रयोग होता आ रहा है। इस वाद्य का प्राचीन इतिहास यहां के लोक ताल, लोकगीत तथा लोक नृत्य स्वयं दर्शाते हैं। जिनके साथ इस वाद्य का प्रयोग होता आ रहा है। आज भी इस वाद्य को लोकप्रियता प्राप्त है। यह वाद्य देव गीतों व देव त्यौहारों, भजनों इत्यादि के साथ भी बजाया जाता है। लेकिन इसका अधिकतर प्रयोग लोक गीत के साथ किया जाता है। यहां पर जिस खंजरी वाद्य का प्रयोग होता है वह अन्य क्षेत्रों की खंजरी से कुछ भिन्न है। यह आकार में बहुत बड़ी होती। इसके झनकार को अधिक छल्ले भी नहीं होते। इस वाद्य का वादन गीतों और नृत्यों को अत्यंत मनमोहक बना देता है।

करनाल

करनाल वाद्य का हिमाचल प्रदेश के लोक वाद्यों में मांगलिक वाद्यों में सर्वप्रथम स्थान दिया जाता है वैसे तो सभी कलाकारों की तथा हमारे भारतीय संगीत की यह विशेषता है कि हम संगीत का संबंध ही ईश्वर से मानते हैं। और अपने–अपने वाद्य ही ईश्वर से मानते हैं और अपने–अपने वाद्य को ही अपना अराध्य देवता मानते हैं। लेकिन जब करनाल के स्थान की बात करते है तो सभी वाद्यों में इसकी ध्वनि को मंगलकार माना जाता है। वाद्य यंत्र की अग्रिम पंक्ति में प्रथम स्थान पर इसकी स्थापना की जाती है। इसक तीव्र ध्वनि दूरगामी होती है। देवी–देवतओं के पूजन के समय ही अन्य वाद्यों की पूजा के साथ–साथ करनाल का भी पूजन किया जाता है।

हिमाचल के शिमला के क्षेत्रों में करनाल वाद्य नगारा, ढोल, शहनाई के साथ संगत में प्रयोग होता है। इस वाद्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी नगारा, ढोल वाद्य के प्रचलन के साथ ही जुड़ी हुई है। यह भी एक प्राचीनतम वाद्य है। इसका प्रयोग देव–मन्दिरों, देव–उत्सवों तथा अन्य पारम्परिक संस्कार उत्सवों के समय अन्य वाद्यों के साथ होता है। रणभूमि में जाते हुए भी इसका प्रयोग किया जाता था जिसे इसके प्राचीन इतिहास का पता चलता है। इस वाद्य में मिलते–जुलते तुरही, भेरी नाम के वाद्यों का उल्लेख शास्त्रों में भी मिलता है परंतु यह वाद्य जो इस पहाड़ी क्षेत्र में प्रचलित हैं यह उनसे भिन्न है

इस वाद्य के बनाने वाले कारीगर भी स्थानीय ही रहे हैं। नगारा, ढोल, शहनाई तथा करनाल ये सभी वाद्य एक दूसरे के पूरक हैं। ये चारों वाद्य एक दूसरे की संगत के साथ शोभायमाना लगते हैं। करनाल वाद्य का प्रयोग इन वाद्यों के साथ पुराने समय होता आ रहा है। इस वाद्य का प्रयोग देव–गीतों, लोक–गीतों, लोक–नृत्यों के साथी भी होता है। यह वाद्य प्राचीनतम लोक–नाट्य करयाला के ताल एवं गीतों के साथ भी प्रयोग होता है। शिमला के ऊपरी क्षेत्रों में इस वाद्य को दो या चार वादक मिलकर स्वर से स्वर मिलाकर इसे बजाते हैं। किन्तु निचले क्षेत्रों में एक केवल एक वादक कलाकार ही इस वाद्य को अन्य वाद्यों के साथ बजाता है।

रणसिंगा

रणसिंगा एक प्राचीन वाद्य है। इसके नाम से अनुमान लगाया जा सकता है कि युद्ध वाद्यों में अर्थात जो वाद्य युद्ध भूमि में बजाए जाते थे उनमें रणसिंगा भी प्रयोग होता होगा। इसके अतिरिक्त प्राचीन संगीत इतिहास ग्रंथो से भी ज्ञातव्य हे कि इसका प्रयोग रणभूमि में होता था। यह एक ऐसा वाद्य है हिक इससे मिलते जुलते वाद्य भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी बहुप्रचलित हैं।

हिमाचल के शिमला क्षेत्रों में इस वाद्य का प्रयोग प्राचीन समय से होता आ रहा है। यह वाद्य रामायण–काल तथा महाभारत काल से प्रचार में रहा है। संभवतः युद्ध अर्थात रण में इस वाद्य की प्रमुखता रही होगी। इसी कारण इस वाद्य का नाम रणसिंगा पड़ा। इसका आकार हीरण के सींगों में भी मिलता है इसलिए इसे 'हरणसिंगा भी कहते हैं। यह वाद्य भी अन्य लोक वाद्यों, नगारा, ढोल, शहनाई तथा करनाल के साथ प्रयोग होता है। इस वाद्य का इतिहास भी इन्हीं प्राचपीन वाद्यों के साथ जुड़ा है। शिमला क्षेत्रों के देव–मन्दिरों, देव–उत्सवों एवं अन्य संस्कार उत्सवों पर इस वाद्य का प्रयोग किया जाता है। यह वाद्य करनाल के साथ मेल खाता है। इस वाद्य के प्रयोग से वादन अत्यंत आकर्षक हो जाता है। इस वाद्य को देव पूज्य वाद्य माना जाता है। इस वाद्य के वादक कलाकार किसी विशेष जाति के नहीं होते। पहले इस वाद्य को अधिकतर पुजारी, पंडित तथा पुरोहित आदि ही बजाते थे परंतु अब यह वाद्य इन लोगों के अतिरिक्त अन्य कला प्रेमी कलाकार भी बजाते हैं। देव–यात्रा, राजा–महाराजाओं की यात्रा तथा युद्ध में इसका प्रयोग सबसे आगे चलते हुए किया जाता है। इन क्षेत्रों में ऐसे बहुत से संस्कार उत्सव हैं जैसे मुण्डन संस्कार, विवाह इत्यादि पर, इसके अतिरिक्त देव–गीत, देव–जातर, लोक नृत्य, देव–नृत्य, गुड़ाई (कृषि कार्य) आदि जिन पर इस वाद्य का वादन अन्य वाद्यों के साथ किया जाता है। यहां के ऐसे बहुत से मेले त्यौहार भी हैं जिसे बिशु, दीवाली, खेल, ठोडे का खेल इत्यादि जिन अवसरों पर लोक–गीतों तथा लोकनृत्यों के साथ इस वाद्य का वादन होता है।

थाली

परिचयः थाली वाद्य का देव–मंदिरों एवं देव–संगीत में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। यह वाद्य देव–पूजा तथा

देव–यात्रा में प्रयोग होता है। यह भी एक प्राचीनतम वाद्य है। इसका प्रयोग पांच पाण्डव देवता के साथ पूजा में तथा वार्षिक शोभा यात्रा में होता है। यह वाद्य ताल को अत्यंत आकर्षक बना देता हैं बहुत ही कलात्मक ढंग से ताल के साथ ताली लय का प्रयोग इस पर होता है। इसका प्रयोग अधिकतर देव–मंदिरों में ही होता हैं देव–उत्सवों, देवता के वार्षिक मेले–त्यौहारों पर इसका प्रयोग अन्य देव–वाद्यों के साथ होता है। देव यात्रा में इसका वादन उन्हीं लोगों द्वारा किया जाता जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी से करते चले आ रहे हैं। कहा भी जाता है कि इसका वादन इन्हें ही करना पड़ता है अन्यथा इनका देवता रूठ जाता हैं जो इनके लिए अच्छा नहीं समझा जाता है।

छैणे

छैणे भी धन वाद्य का ही एक प्रकार है। यह पहाड़ी क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण वाद्य है। यह वाद्य प्राचीन मंदिरों में देवी–देव पूजा के लिए तथा पारम्परिक लोक–गाथाओं के साथ एवं सांस्कृतिक गीतों में अन्य वाद्यों के साथ प्रयोग होता है। यह भी एक अत्यंत प्राचीन वाद्य है। छैणे बड़े तथा छोटे दो प्रकारके होते हैं। बड़े छैणों का वादन ताल को आकर्षक बनाने के लिए लोक गाथाओं, लोकसंगीत तथा भक्ति–संगीत के साथ किया जाता है। यह वाद्य भारत के अन्य क्षेत्रों में भी प्रचलित है।

खड़ताल

खड़ताल शिमला क्षेत्र का एक प्रचलित घन वाद्य है। यह एक ताल वाद्य है। इस वाद्य की उत्पत्ति प्राचीनकाल में हुई मानी जाती है। शास्त्रों में भी इस वाद्य का वर्णन मिलता है। प्राचीन संत गायकों व वादकों द्वारा इस वाद्य का व्यापक प्रयोग होने का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। वे लोग एक हाथ में एकतारा तथा दूसरे हाथ में खड़ताल वाद्य लेकर सामूहिक वादन करते थे तथा इसके साथ भजन गाते थे। प्राचीन चित्रकलाओं तथा भित्ति चित्रों में खड़ताल वाद्य देखने को मिलता है। आधुनिक समय में इस वाद्य का प्रयोग देव–संगीत, लोक–संगीत, भक्ति संगीत, तथा नृत्य आदि में किया जाता है।

शिमला क्षेत्र के देवगीतों में प्रयुक्त होने वाली तालें

ताल संगीत प्रत्येक पहलू को निश्चित गति तथा समय के अनुसार नियंत्रित करता है संगीत जिस भाव का होगा ताल उसी के अनुरूप अपना आकार तथा रूप धारण कर लेता है तथा उसी रस की निष्पति के सहयोगी बनकर जुट जाता है। प्राचीन मंदिरों में देव पूजा हो या लोक कथाओं पर अधारित देव–गीत इन दैविक शक्ति के साथ जिन तालों का प्रयोग किया जाता है उनका परिचय इस प्रकार है–

आरती ताल

शिमला के कुछ क्षेत्रों में यह ताल बहुत प्रचलित है। व्यावसायिक कुशल कलाकार इस ताल को बड़े रोचक ढंग से बताते हैं। इसके नाम से ही विदित होता है कि यह ताले देव–पूजा से संबंधित है।

प्रातः तथा सांय देवी–देवता की पूजा के लिए इस ताल का वादन किया जाता है। इसके अतिरिक्त आरती ताल से ही नगारा, ढोल तथा शहनाई का वादन से विभिन्न देव–उत्सवों का शुभांरभ होता है। शिमला जिला के क्षेत्रों में प्रचलित आरती ताल की 12 मात्राएं हैं। इसकी चाल एक अलग प्रकार की है जो कि इसके बोलों से स्वयं ज्ञात होता है। आरती ताल की मात्राएं तो शास्त्रीय एक ताल तथा चौताल से मेल खाती हैं किन्तु इसके बोल इन शास्त्रीय तालों से बिल्कुल भिन्न हैं।

x			2			3			4		
मात्रा											
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल											
धा	ता	धीं–न	धा	ता	कड़ कड़	तां	तड़ां	धीं–त	धा	ता	कड़ कड़

नौबत ताल

यह ताल उस समय बजाया जाता है, जब उत्सव आरंभ होता है वादक कलाकार खुले प्रांगण में बैठकर नौबत ताल का वादन करते हैं। आरती के पश्चात इस ताल को बजाया जाता है। यह ताल सामूहिक रूप से ढोल, नगारा, शहनाई की धुन के साथ बजाया जाता है। इसमें सहजता से परण, टुकड़े, लयकारी का प्रदर्शन अधिक रोचक होता है। इस ताल की मात्रा 8 है तथा इसके भाग बोलों के अनुसार चार हैं तथा इसमें चार की तालियों का संकेत है। यह ताल शास्त्रीय ताल 'जत' से मेल खाता है।

x		2		3		4	
मात्रा							
1	2	3	4	5	6	7	8
बोल							
धाक्ड़	धीं	धाधा	टीं	ताक्ड़	धीं	धाध	कड़कड़

नाटी ताल

यह ताल अधिकतर लोक नृत्य 'नाटी' के साथ प्रयोग होता है। शिमला जिला का विशेषकर यह एक अत्यंत लोक प्रिय ताल है। इस ताल को लोकनृत्य के अतिरिक्त देव–नृत्य के साथ भी बजाया जाता है। नाटी ताल के कई प्रकार हैं जैसे कि ढीली नाटी, देव नाटी, माला नाटी, मुंजरा नाटी इत्यादि। यह ताल चार, छह, आठ बारह, मात्राओं के प्रकार से विभाजित होती है। नाटी ताल का वादन ढोलक, तूरी ढोल व नगारा तथा शहनाई वाद्यों पर नाटी ताल की लोक–धुनों व देव–गीतों पर इस ताल को बजाया जाता है। ढोल वादक नाटी ताल को आकर्षक बनाने के लिए बीच–बीच में तिरकिट तथा तिहाइयों कर भी वादन करते हैं। इस नाटी ताल पर लोग–गीत व देव–गीत गाकर लोग रात–रात भर झूमते व नाचते रहते हैं। नाटी ताल के कुछ ताल इस प्रकार है जिन्हें देव–गीतों के साथ वाद्यों पर प्रयोग में लाया जाता है।

x		2		3		4	
मात्रा							
1	2	3	4	5	6	7	8
बोल							
धा–ना	–कड़	धा–ना	–कड़	धा–ना	–कड़	धा–क	–ड़कड़

नाटी का दूसरा प्रकार(ढीली नाटी)

x			2			3			4		
मात्रा											
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल											
कडॉ	तींतीं	नाकी	कडॉ	तींतीं	नाकी	कडॉ	तींतीं	नाकी	तॉतॉ	–नधी	–न्ना

तेज नाटी

x			2			3			4		
मात्रा											
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल											
धा	तीं	न	धा	तीं	न	धा	तीं	न	धा	तिर	तिर

मध्य लय (माला नाटी)

x			2			3			4		
मात्रा											
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल											
धा	तीं	न	धा	तीं	न	धा	तीं	न	धाती	धी	धी

जंग ताल

यह ताल देव प्रकट के लिए बजाया जाता है तथा अन्य शुभ अवसरों पर भी इसका वादन किया जाता है जब देवता के गुर (देंवा) की दैविक शक्ति के रूप में प्रकट करवाना होता है तो इस जंग ताल का वादन किया जाता है यह ताल आरंभ में विलंबित लय में तथा धीरे–धीरे मध्यमलय व अंत समय में यह ताल काफी द्रुत लय में बजाया जाता है। इसमें जब चार–पांच ढोलक वादक एक जगह इकट्ठे होकर शहनाई की धुन के साथ सभी वादक अपनी–अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं इस ताल में एक वादक सीधा ताल बजाता रहता है तथा अन्य ढोलक वादक शहनाई की धुन के साथ परन, टुकड़ों तथा तिहाइयों का सुंदर काम करते हैं। लय को प्रदर्शन करने के लिए नगारा वाद्य पर शंकु द्वारा वादन किया जाता है। शहनाईं वादक देव गीत या माता भजन आदि की स्थाई बार–बार बजाता रहता है। यह स्थाई वाद्यों के सामूहिक वादन के लिए लहरें का काम करता है। इस ताल के सौंदर्य

रूप बीच–बीच में करनाल या अन्य वाद्यों का वादन सामूहिक रूप से किया जाता है। जंग लाल को दो रूपों में बजाया जाता है।

मात्रा
बोल
धींना तांतां

जंग लाल का दूसरा प्रकार

x		2		3			4		
मात्रा									
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
बोल									
धीन	तक	धीन	तक	धड़क	धड़क	तक	धड़क	धड़क	तक

इस ताल के चार भाग प्रथम दो के व अंतिम दो, तीन–तीन के है यह जंग ताल प्रकार अति द्रुत लय में ताल वाद्या से पर बजाया जाता है।[9]

हिमाचल प्रदेश के शिमला जिला के क्षेत्रों में लगभग सभी देव गीतों के साथ नृत्य किया जाता है। स्वर वाद्यों पर अलग अलग देव गीतों की धुनों तथा ताल वाद्यों पर अलग–अलग तालों के वादन के साथ में नृत्य किए जाते हैं। जिला शिमला के विभिन्न प्रकार के देव–उत्सवों व देव–गीतों के साथ प्रयुक्त होने वाले नृत्य इस प्रकार हैं–

माला नृत्य

यह नृत्य शिमला क्षेत्र का अत्यधिक प्रचलित नृत्य है। माला का शब्दिक अर्थ है–हार। जिस प्रकार भिन्न–भिन्न फूलों को एक धागे में पिरोकर एक हार तैयार किया जाता है उसी प्रकार जब किसी लोकगीत या देवगीतों के साथ व्यक्ति एक दूसरे के सहाथ पकड़कर गीत व वाद्य के साथ झूमकर नृत्य करते हैं तो उसे माला नृत्य कहा जाता है। इस नृत्य का प्रयोग अधिकतर विभिन्न संस्कारों, उत्सवों जैसे विवाह, जन्म, मुण्डन, अखिण, जातर व मेले व त्यौहारों में किया जाता है। शिमला क्षेत्रों में जब मंदिरों से देव या देवी की प्रमुख प्रतिमा को किसी विशेष पर्व या देव–त्यौहार में बाहर देव प्रांगण में लाया जाता है। तो सर्व प्रथम वहां के लोगों द्वारा अपने–अपनें कुलिष्ट देवी–देवताओं की पूजा अपने–अपने रीति–रिवाजों के तहत पूरी की जाती है। और फिर महिलाएं व पुरुष एक लंबी कतार बनाकर व एक दूसरे का हाथ पकड़कर देव–गीत या लोकगीत गाकर देवता के समक्ष माला नृत्य को पेश करते हैं। इसका गायन अधिकतर लंबी कतार के आरंभ के दो या चार व्यक्तियों द्वारा किया जाता है और बाद में उच्चारण की गई लाईन को बाकी सभी व्यक्तियों द्वारा गाया जाता है। इसके साथ अधिकतर वाद्य नगारा, ढोल, शहनाई अहम भूमिका निभाते हैं। कभी–कभी माला नृत्य के गीत का आरंभ शहनाई वाद्य पर भी किया जाता है। देव गीतों के साथ जब माला नृत्य किया जाता

[9] श्रीराजेश गंधर्व जी के साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी के अनुसार।

है तो कोई विशेष पौशाक नहीं होती लेकिन जब कभी किसी मंच पर नृत्य को प्रदर्शित किया जाता है तो भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के लोगों द्वारा अपने–अपने सामाजिक वेश–भूषा के अनुसार कोई विशेष प्रकार की वेशभूषा तैयार करवाई जाती है जिसे पहनकर इस नृत्य को मंच या खुले प्रांगण मेले आदि में किया जाता है। इस नृत्य विद्या का अधिकतर प्रयोग ऊपरी शिमला के पहाड़ी क्षेत्रों में मिलता है यहां पर ऐसा कोई धार्मिक त्यौहार या मेला उत्सव नहीं होता जहां पर इस माला नृत्य को प्रस्तुत न किया जाता हो।

मुंजरा नृत्य

इस नृत्य विधा का प्रचलन प्राचीनकाल व राजा–महाराजाओं के शासनकाल से चला आ रहा है। मुंजरा नृत्य अधिकतर वेश्यावृति के समाज में विकसित हुआ है। यह नृत्य अधिकतर श्रृंगार से परिपूर्ण होकर नर्तकी द्वारा राजा–महाराजाओं के भोग–विलास को पूर्ण करने के लिए प्रस्तुत किया जाता था।

हिमाचल प्रदेश, जिला शिमला के क्षेत्रों में मुंजरा नृत्य का एक अलग ही स्वरूप देखने को मिलता है। शिमला के ऊंचाई वाले क्षेत्रों में आरंभ से ही इस नृत्य का प्रचलन रहा है। परंतु इसके अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश के अन्य एक दो जिलों को छोड़कर यह नृत्य कम ही देखने को मिलता है। यह नृत्य देव–गीतों व लोक–गीतों के साथ प्रस्तुत किया जाता है। यह नृत्य लगभग सभी मांगलिक मेले त्यौहारों तथा अनुष्ठानिक पर्व आदि में विशेष रूप से प्रस्तुत किया जाता है। शिमला जिले के लगभग सभी ऊपरी क्षेत्रों में जब देवता या देवी अपने क्षेत्र की यात्रा के लिए निकलते हैं तो जिस गांव में देवता का रात्रि को पड़ाव होता है। उस जग हपरवहां की स्थानीय जनता खुश होकर एक जगह एकत्रित होकर मुंजरा नृत्य का आयोजन किया जाता है। देवी–देवता की यह यात्रा लगभग एक माह तक चलती रहती है। यह नृत्य एक जगह पर एकत्रित व्यक्ति एक समूह में बैठकर तथा ढोलक, नगारा, शहनाई, खंजर, चिमटा आदि वाद्य लेकर देव–गीत या लोकगीत का गायन करके नृत्य एक या दो व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें मुख्य एक गायक होता है बाकी सभी पीछे सहगायक का काम करते हैं। यह कार्यक्रम सारी रात भर चला रहता है। कुछ क्षेत्रों में यह नृत्य प्रस्तुत करने की एक अलग भी प्रथा है जब किसी के घर में पुत्र पैदा हो या किसी मनवांछित फल की प्राप्ति हो तो उन परिवार के लोगों द्वारा इस शुभ अवसर पर अपने कुलिष्ठ देवी या देवता को लेक जाकर और अपने सगे–संबंधियों रिश्तेदारों को बुलाकर इस खुशी के कार्यक्रम को पूर्ण किया जाता है इसप्रकार के कार्यक्रम को इन क्षेत्रों में 'अखिण' भी कहते हैं। इस अखिण के पावन अवसर पर उस घर के सगे–संबंधी दिन या रात को देव–पूजा के उपरांत एक समूह में घर के प्रांगण में बैठकर मंजुरा का आयोजन करते हैं। इसके आयोजन में देव–गीत या लोकगीत का गायन करते हैं और उस घर में किसी विशेष व्यक्ति द्वारा नृत्य जन समूह के मण्य में खड़े होकर प्रस्तुत किया जाता है। बाकि सहगायकों द्वारा ताली की थाप देकर नृत्य में और अधिक जान ला दी जाती है। इस प्रकार घर में आए मेहमानों का मनोरंजन भी हो जाता है और इसक उपरांत सांयकाल सभी जनता को भोजन करवाकर तथा देवी–देवता की विदाई के साथ इस अखिण का समापन होता है।

बिरसु नृत्य

इस नृत्य विद्या का प्रचलन काफी पुराना माना जाता है। यह नृत्य अधिकतर शिमला जिले के ऊपरी क्षेत्र रोहड़ूं, जुब्बल, कोटखाई व इस क्षेत्र के सभी भागों में मनाया जाता है। इस नृत्य के संबंध में यह कहा जाता है भादो मास के पत्थर चौथ के दिन रोहड़ू व इसके आसपास के क्षेत्रों में जागरा नृत्य मनाया जाता है। कहते हैं जब–जब रात को कोई मुसीबत पड़ी उन्होंने शिव की अराधना की और उनके संकट दूर हुए। जागरा जिसे हम जागरण भी कहते हैं। यह पर्व इन क्षेत्रों में लगभग एक माह तक चलता रहता है। यह क्षेत्र छोटे–छोटे गांव में बंटा होने के कारण बारी–बारी से तिथि के अनुसार सब गांव में इस पर्व को मनाया जाता हैं इन गांव के लोगों का अपना–अपना कुलिष्ठ देवी या देवता होने के कारण यह परम्परा प्राचीनकाल से आज तक चली आ रही है। किसी भी गांव में इस पर्व की निश्चित तिथि के दिन अपने–अपने रिश्ते व सगे–संबंधियों को निमंत्रण देकर अपने घर बुलाया जाता है। संध्या के समय देव पूजा की जाती है। यह पूजा उस देवता के पुजारी, भंडारी व गांव के बुजुर्गों द्वारा की जाती है। दस दिन कुलिष्ठ को पानी, गंगाल व गोमूत्र के बीच नहलाया जाता है। और बाद में इस पवित्र पानी को देवरूपी आशीर्वाद के रूप में सब जनता के ऊपर छिड़काया जाता है व इसके उपरांत गांव के सभी बच्चे व मर्द, बुजुर्गों द्वारा हाथ में दयार लकड़ी के छोट–छोटे बंडल बनाकर उसे जलाया जाता है। उसे जलाने से मानो रात्रि दिन में परिवर्तित हो गई हो ऐसा प्रतीत होता है और साथ में सभी देवता की स्तुति गाकर नृत्य करने के लिए मानो विवश हो जतो हैं क्योंकि इन स्तुति को ढोल, नगारा, करनाल आदि वाद्यों के साथ गाया जाता है। इस नृत्य की कोई विशेष पहचान नहीं है। सिर्फ इसे बिरसु नृत्य कहकर ही पुकारा जाता है। न ही इसका कोई विशेष पहनावा है और न ही कोई श्रृंगार, बस हाथ में ज्वलित लकड़ी के साथ सब गांव के पुरुष व बच्चे झूमते रहते हैं और स्त्रियां एक जगह बैठकर इस नृत्य का आनंद लेती है। यह नृत्य लगभग एक घंटे तक लगातार चलता रहता है। इस नृत्य क समाप्त होने के पश्चात स्त्रियां व पुरुष मिलकर एक पंक्ति में खड़े होकर लोकगीतों को गाकर तरह–तरह का नृत्य करते हैं। इस बिरसु नृत्य की परम्परा लगभग एक माह तक सभी गांव में बारी–बारी चलती रहती है।